द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास २

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

१. अजित-शांति स्तव

मंत्रो का राजा नवकार महामंत्र.....

व्रतो का राजा शीलव्रत....

पर्वो का राजा पर्वाधिराज पर्युषण पर्व.....

तथा

तीर्थो का राजा सिद्धचल तीर्थ.....

जहाँ कंकर कंकर में अनंत आत्माओ ने सिद्धगति पाई है । ऐसे तीर्थाधिराज की छः गाउ की यात्रा फागुन सुदि तेरस के परम पावन दिन पर होती है । इस दिन इस गिरिराज के सद्भद्र नाम के शिखर पर कृष्ण वासुदेव के दो पुत्र शांब तथा प्रद्युम्नकुमार साडे तीन करोड (साडे आठ करोड) मुनिओं के साथ सिद्ध पद को प्राप्त किया है ।

इस छः गाउ की यात्रा मार्ग पर श्री अजितनाथ भगवान और श्री शांतिनाथ भगवान की दो देरीयाँ आती है । जहाँ आज भी अजीतशांति स्तव बोला जाता है, क्यों ? किसलिये ? इसका जवाब सिद्धाचलजी के १०८ खमासमणा में ८१ वाँ खमासमणे में दिया है ।

नमि-नेमि जिन अंतरे, अजित शांति स्तव कीध;
ते तीर्थेश्वर प्रणमिये, नंदिषेण प्रसिद्ध...८१

कहा जाता है कि शत्रुंजय तीर्थ पर श्री अजीतनाथ तथा श्री शांतिनाथ प्रभु की देरीयां आमने सामने थी एक के दर्शन करने पर दूसरे की तरफ पीठ आती थी । एक बार श्री नमिनाथ प्रभु और श्री नेमिनाथ प्रभु के अन्तर में श्री नंदिषेणजी नाम के महामुनि तीर्थ यात्रा के लिये पधारे । श्री अजीतनाथ तथा श्री शांतिनाथ प्रभुजी की ऐसी देरियाँ देखकर वहाँ उन्होनें इस **'' अजित शांति स्तव''** की रचना की । इस स्तोत्र में श्री अजीतनाथ भगवान तथा श्री शांतिनाथ भगवान का विशेष वर्णन तथा गुणगान करने पूर्वक भाव से वंदना की गई है । इस स्तवना के प्रभाव से श्री शत्रुंजय तीर्थ पर एक दूसरे के समाने रही हुई श्री अजितनाथ प्रभु और श्री शांतिनाथ प्रभु की देरियाँ एक पंक्ति में हो गई है ।

श्री अजित शांति स्तव

गाहा (गाथा)

अजिअं जिअसव्वभयं सतिंय पसंतसव्वगयपावं,
जय गुरू संति गुणकरे, दोवि जिणवरे पणिवयामि. गाहा....१
ववगय मंगुलभावे, तेहं विउल तव निम्मल सहावे;
निरुवम महप्पभावे, थोसामि सुदिट्ठ सब्भावे. गाहा....२
सव्वदुक्खप्पसंतीणं, सव्वपावप्पसंतीणं;
सया अजिय संतीणं, नमो अजिय संतीणं. सिलोगो.....३
अजिय जिण सुहप्पवत्तणं,
तव पुरिसुत्तम नाम कित्तणं,
तह य धिई मई प्पवत्तणं,
तवय जिणुत्तम संति कित्तणं, मागहिया....४

-: शब्दार्थ :-

अजिअं - अजित स्वामी
जिअसव्वभयं - सभी भयों को जीतने वाले
संतिं - शांतिनाथ भगवान
पसंत - निवृत हुए हैं
सव्व - सभी
गय - रोग
सुदिट्ठ सब्भावे - जीव अजीव के भावों को देखने वाले
सव्वदुक्ख - सर्व दुःख
प्पसंतीणं - जिनके शांत हुए हैं
सव्वपावप्पसंतीणं - जिनके सर्व पाप की शांति हुई है

पावं - जिनके पाप
जयगुरु - जगतगुरु
संति - शांतिनाथ को
गुणकरे - गुणकरने वाले
दोवि - दोनों भी
जिणवरे - जिनवरो को
पणिवयामि - मैं प्रणाम करता हुँ
ववगय - गये हैं
मंगुलभावे - खराब भाव जिनके
तेहं - उनको मैं
विउल - विस्तार वाले
तव - तप से
निम्मल सहावे - निर्मल स्वभाववाले
निरुवम - उपमा सहित
महप्पभावे - महाप्रभावशाली
थोसामि - मैं स्तवना करता हूँ
सया - सदा / हमेशा
अजिय संतीणं - रागादि से जीत न सके ऐसी है शांति जिनकी
नमो - नमस्कार हो
अजिय संतिणं - अजितनाथ तथा शांतिनाथ
अजिय जिण - हे अजितनाथ भगवान
सुहप्पवत्तणं - सुख का प्रवर्तन करनेवाले है
तव - तुम्हारा
पुरिसुत्तम - हे पुरुषो में उत्तम
नामकित्तणं - नाम का किर्तन
तहय - उसी प्रकार
धिइ - धीरज
मई - मति
प्पवत्तणं - प्रवर्तन करने वाला है
तवय - तुम्हारे नाम का
जिणुत्तम - सामान्य केवली में श्रेष्ठ ऐसे
संति - हे शांतिनाथ
कितणं - कीर्तन

गाथार्थ : सर्व भयों को जीतने वाले अजितनाथ स्वामी और जिनके सर्व रोग तथा पाप निवृत्त हो गये है ऐसे शांतिनाथ भगवान हैं, जगत के गुरु और शांति, तथा ज्ञानादि गुणों के कर्ता इन दोनों जिनेश्वरों को मैं प्रणाम करता हूँ.....१

जिनका खराबभाव चला गया है, विस्तारवाले तप से जिनका स्वभाव निर्मल है, जिनका महान प्रभाव उपमा रहित है, जिन्होने जीव अजीव के भावों को देखा है, ऐसे इन दोनों प्रभु की मैं स्तवना करता हूँ.....२

जिनके सभी दुःख शांत हो गये हैं, जिनके सभी पापों का शमन हो गया है और जिनका उपशम पराभूत नहीं हुआ ऐसे अजितनाथ को सदा नमस्कार हो.....३

पुरुषों में उत्तम ऐसे हे अजितनाथ भगवान ! तुम्हारे नाम का कीर्तन सुख का प्रवर्तन करने वाला है । हे जिनोत्तम / जिन श्रेष्ठ शांतिनाथ भगवान ! तुम्हारे नाम का कीर्तन धीरज और बुद्धि का प्रवर्तन करनेवाला है....४

श्रीगणधरवाद

१) श्रीइन्द्रभूति गौतम

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

त्रिलोक विजेता बनने का विचार करते हुए इन्द्रभूति प्रभु जहाँ विराजमान थे वहाँ आकर समवसरण की सीढियां चढते हुए वीर प्रभु को चौतीस अतिशयो से शोभित, सुवर्ण के सिंहासन पर बैठे हुए, देव-मनुष्यों से घिरे हुए, अमृत जैसी वाणी में उपदेश देते देख स्तब्ध हो जाता है, और विचार करता है **'' क्या यह ब्रह्मा है, कि विष्णु है या शंकर है ?** या तो चंद्र है ! नहीं, यह चंद्र तो नहीं है, चंद्र में तो कलंक है, वैसे ही सूर्य भी नहीं है, सर्य तो तीव्र तेजवाला होने से उसके सामने देखा भी नहीं जा सकता,उसी तरह यह मेरु भी नहीं है, मेरु तो अतिशय कठोर है, फिर यह कृष्ण नहीं है, कृष्ण तो श्यामवर्ण के है, तो यह ब्रह्मा भी नहीं है, ब्रह्मा तो वृद्ध है, उसी तरह कामदेव भी नहीं है, कामदेव तो शरीर बिना के है। '' हाँ अब जाना कि ये तो सकल दोषरहित सर्वगुण सम्पन्न ऐसे तीर्थंकर है।'' अरे ! अब मेरे से ये तीन लोक के नाथ किस तरह से जीते जायेंगे ? मेरे द्वारा प्राप्त की गयी कीर्ति अब किस तरह से रहेगी?ऐक कील के लिये पूरा महल तोडने जैसी मूर्खता मैंने की है, एक को नहीं जीता होता तो उससे मेरा क्या बिगडने वाला था ? अब जगत विजेता के रुप में मेरी उपाधि कैसे रहेगी ? अरे मैंने बिना सोचे समझे कार्य किया है, कि मैं विश्व के ईश को जीतने यहां आया हूं, अब उनके समक्ष मैं किस तरह बोल पाऊंगा ? उनके पास किस तरह जाकर खडा रहूंगा ? अरे मैं संकट में आ गया हूँ। मेरे यश का अब शंकर रक्षण करो। यदि मैं किसी भाग्ययोग से इन्हैं भी जीत जाऊं तो मैं त्रिलोक में अद्वितीय विद्वान माना जाऊंगा, ऐसा चिंतन करते इंद्रभूति को अमृत जैसी मधुर वाणी से प्रभु ने **''हे गौतम इंद्रभूति ! तू भले आया, कुशलता से तो आया है न? ''** इसी तरह से बुलाया। यह सुन अपने गोत्र सहित नाम से बुला रहे है, यह क्या ये मेरा नाम और गोत्र भी जानते है ? फिर उसे लगा कि अरे, त्रिलोक में प्रसिद्ध ऐसे मेरे नाम को कौन नहीं जानता ? सूर्य को सब पहचाने उसमें आश्चर्य क्या ? परंतु यदि ये मेरे मन के संदेह को जाने तो मैं इन्हें सच्चा सर्वज्ञ मांनू।

इंद्रभूति विचार कर रहे है, इतने में वीरप्रभु ने कहा कि - हे इंद्रभूति ! तुझे जीव का संशय है ? तू क्या वेद पद का अर्थ नहीं जानता ? ऐसा कहकर मानो समुद्रमंथन का या गंगानदी के पूर की गंभीर ध्वनि होती हो ऐसी गंभीर ध्वनिवाले स्वर से प्रभु ने कहा कि **''विज्ञानधन, ऐवैभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तिइति''** हे इंद्रभूति ! तू प्रथम इस वेद पदो का अर्थ ऐसा कर रहा है कि ''विज्ञानधन यानि गमनागमन की चेष्टावाली आत्मा, जैसे मदिरा के योग्य वस्तुये एकत्रित होने पर मदिरा बन जाती है और उसमे मद (नशा) पैदा

होता है वैसे ही आत्मा, पृथ्वी, अप, तेज, वायु एंव आकाशरुप पांच भूत से उत्पन्न होकर पानी में से उत्पन्न हुआ बुलबुला फूटकर उसी पानी में विलीन हो जाता है, उसी तरह ये आत्मा इन पांच भूतो में ही नाश पाती है, इसलीये पांच भूतो से आत्मा अलग न होने से मरकर कोई भी फिर से जन्म नहीं लेता है, इसलीये परलोक नहीं है, ऐसा तू अर्थ कर रहा है, वो अर्थ बराबर नहीं है, कारण कि विज्ञानधन यानि ज्ञान एवं दर्शन का जो उपयोग वो विज्ञान कहलाता है, उसके एकरुपपने से आत्मा भी विज्ञानधन जानना । आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में अनंतज्ञान दर्शन के पर्याय होने से विज्ञानधन यानि ज्ञान दर्शन के उपयोग स्वरुप आत्मा किसी तरह से पृथ्वी आदि पांच भूतो या उनसे बने घटपटादि पदार्थो के उपयोग पने से ऊत्पन्न होती है, अर्थात घटादिज्ञान पन से परिणामित आत्मा घटादि हेतु से ही होती है कारण कि, घटादिज्ञान के परिणाम को घटादि वस्तु का सापेक्षपना है इसलिये ये पांच भूत या उससे बनी घटादि वस्तु के उपयोगपने से उत्पन्न हुई आत्मा फिर से उन वस्तुओं के पीछे विनाश पाती है । तात्पर्य यह है कि, घटादि वस्तुये नाश पायी हो या नजर से दूर विद्यमान हो तो भी जीव तो उस घटादि के उपयोग पने से नाश पाता है, और दूसरे उपयोगपने से उत्पन्न होता है अथवा सामान्य रुप पने से रहता है याने घटादि उपयोगरुप पूर्व की संज्ञा रहती नहीं कारण कि वर्तमान उपयोग से उसका नाश हुआ है, वो आत्मा ज्ञानमय है तथा ददद ये तीन दकारमय है यानि दम, दान एंव दया, ये तीन दकार को जो जाने वो जीव कहलाता है । वैसे वेद वाक्य भी आत्मा को सिद्ध करता है जैसे दूध में घी, तिल में तेल, काष्ट में अग्नि, पुष्प में सुगंध और चन्द्र में जैसे अमृत रहा हुआ है, वैसे शरीर में आत्मा रही हुई है, फिर भी वो शरीर से अलग है । इस तरह से प्रभु के मुख से वेद पदो का सच्चा अर्थ सुनकर इंद्रभूति का संशय नाश पाने से उसका अभिमान चला गया और विनीत तथा नम्र बन तुरंत ही वो इंद्रभूति प्रभु के चरणों में झुक गया और प्रभु के पास अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यों सहित दीक्षा ले प्रभु का प्रथम अनन्य विनीत शिष्य हुआ । प्रभु ने उसी समय उसे **''उपन्नेइवा'' ''विगमेईवा'' ''धुवेइवा''** ये त्रिपदी दी । उसका विनीत भाव से स्वीकार कर इंद्रभूति ने तुरंत ही द्वादशांगी की रचना की ।

वैसे तो भगवान महावीर से भी इंद्रभूति उम्र में बडे थे । भगवान महावीर को जब केवलज्ञान हुआ तब प्रभु ४२ वर्ष की उम्र के थे और उस दिन दीक्षा ली तब इंद्रभूति ५० वर्ष के थे । भगवान महावीर का कुल आयुष्य ७२ वर्ष का था, गौतम की कुल आयुष्य ९२ वर्ष का था, भगवान महावीर से वे २० वर्ष उम्र में बडे थे, भगवान महावीर से आठ वर्ष पहले उनका जन्म हुआ था और १२ वर्ष बाद उनका निर्वाण हुआ था ।

घर संसार के ५० वर्ष पूर्ण कर गृहस्थाश्रम छोडकर साधु बने, उन्होंने कुल ४२ वर्ष चारित्र पाल साधु के रुप में विचरण किया और इस ४२ वर्ष में भी ३० वर्ष छद्मस्थ पने में रह भगवान महावीर के साथ छाया की तरह रहकर लगातार सेवा, भक्ति की है । भगवान महावीर के निर्वाण की रात्रि आसो मास (अश्विन) की अमावस्या के अंतिम प्रहर में अर्थात कार्तिक मास की मंगल प्रभात में गौतमश्री उम्र के ८० वें वर्ष में केवलज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बने और बारह वर्ष तक केवलज्ञानी के रुप में इस धरातल को पावन करते हुए विचरण किया ।

चौथे आरे में जन्मे हुए एवं निरुपक्रम आयुष्य धारण करने वाले पूज्य इंद्रभूति गौतम वज्रऋषभनाराच नामक प्रथम सर्वोत्तम शरीर का संघयण तथा मोक्ष गमन योग्य समचतुरस्त्र संस्थान धारण करते थे । उनकी तपश्चर्या बेजोड थी, आजीवन छट्ठ के पारणे छट्ठ की तपश्चर्या उन्होनें की थी ।

अनेक लब्धियों के निधान इंद्रभूति गौतम लब्धि के भंडार थे, एक पात्र में अंगूठा रख १५०० तापसो को पारणा कराया था । सूर्य की किरणों को पकड अष्टापदतीर्थ चढे । जंघाचारण लब्धि वगैरह अनेक लब्धियां उनके पास थी । ''केवलज्ञान केवलरुप हुअे रे '' वे जिसको दीक्षा देते उसे केवलज्ञान होता था । त्रिपदी पाकर द्वादशांगी के रचयिता और १४ पूर्व के ज्ञाता गौतम छद्मस्थकाल से ही थे । प्रभु महावीर के निर्वाण के बाद १२ वर्ष पश्चात गौतम का निर्वाण हुआ । वे ९२ वर्ष की दीर्घवय में राजगृही पधारे और वहां अन्तिम साधना के रुप में एक मास का (पादपोपगमन अनशन) संलेषणा कर के अंत में देहत्याग कर सदा के लिये अजर, अमर, अविनाशी बन गये । सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, निरंजन, निराकारी बन गये । प्रभु महावीर के प्रथम शिष्य, प्रथम गणधर के रुप में बडा सद्भाग्य प्राप्त कर चुके इंद्रभूति गौतम आज भी ''गौतमस्वामी'' के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

श्री गौतमस्वामीजी का अष्टक

श्रीइन्द्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं,
पृथ्वीभवं गौतम-गोत्र रत्नम;
स्तुवन्ति देवाऽसुर-मानवेन्द्राः.
सगौतमो यच्छतु वांछितं मे. ।।१।।

श्रीवर्धमानात् त्रिपदीमवाप्य,
महूर्त-मात्रेण कृतानि येन;
अङगानि पूर्वाणि चंतुर्दशापि,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।२।।

श्री-वीर-नाथेन पुरा प्रणीत,
मन्त्र महानन्द-सुखाय यस्य;
ध्यायन्त्यमी सूरि-वराः समग्राः,
स गौतमो यच्छतु वांछित में ।।३।।

यस्याभिधानं मनुयोऽपि सर्वे,
गृह्णन्ति भिक्षा-भ्रमणस्य काले;
मिष्टान्न-पानाम्बर-पूर्ण-कामाः,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।४।।

अष्टापदाद्रौ गगने स्व-शक्त्या,
ययौ जिनानां पद वन्दनाय;
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेभ्यः,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।५।।

त्रिपंच-संख्याशत-तापसानां,
तपः-कृशानामपुनर्भवाय;
अक्षीण-लब्ध्या परमान्न-दाता,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।६।।

दक्षिणं भोजनमेव देयं,
साधर्मिक संघ-सपर्ययेति;
कैवल्य-वस्त्रं प्रददौ मुनीनां,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।७।।

शिवं गते भर्तरि वीर-नाथे,
युगप्रधानत्वमिहैव मत्वा;
पट्टाभिषेको विदधे सुरेन्द्रैः,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।८।।

त्रैलोक्य-बीजं परमेष्ठि-बीजं,
सजज्ञान-बीजं जिनराज-बीजम् ;
यन्नाम चोक्तं विदधाति सिद्धिं,
स गौतमो यच्छतु वांछित मे. ।।९।।

श्री गौतम स्याष्टकमादरेण,
प्रबोध-काले मुनि-पुङ्गवाये;
पठन्ति ते सूरिपदं सदैवा,
ऽऽनन्दं लभन्ते नितरां क्रमेण ।।१०।।

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

हम जिस द्वीप में रहते है उसका नाम जंबुद्वीप क्यों पडा ?

इस द्वीप का अधिष्ठायक देव अनाद्रुत उत्तर कुरु में आये हुए महा जंबुवृक्ष पर निवास करता है । यह महाजंबुवृक्ष छः वलयों से वेष्टित है । उसकी एक शाखा पौने चार योजन की है, ऐसी चार दिशाओं में चार शाखाएं है । मध्य में वीडीमा नाम की छः योजन उंची शाखा है । यह जंबुवृक्ष ८ योजन उंचा, ८ योजन लंबा और ८ योजन चौडा है । उस वृक्ष के मोटाई २ गाऊ है और उंचाई २ योजन है । वीडीमा शाखा पर देवालय है । चारों शाखाओं पर रहने के निवासस्थान है । पूर्व की शाखा को प्रासाद कहा जाता है , अन्य तीन दिशाओं में भवन है ।

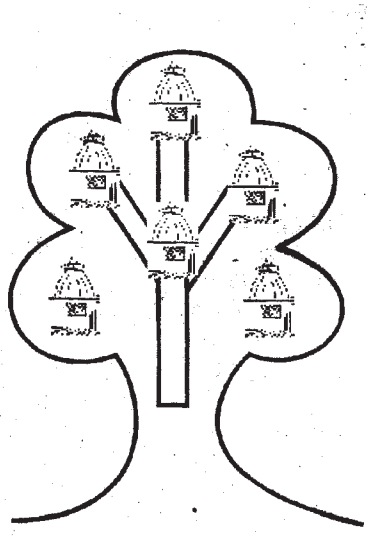

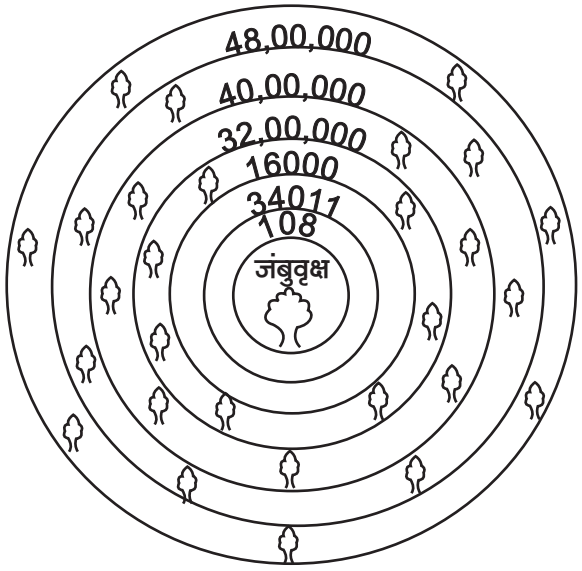

छः वलयों में अनुक्रम से १०८, ३४०११, १६०००, ३२००००० , ४०००००० , ४८००००० जंबुवृक्ष है । उनकी गिनती करने पर महाजंबुवृक्ष १,२०५०१२० ऐसे छोटे, बडे शाश्वत जंबुवृक्षों से परिपूर्ण है, अतः इस द्वीप का नाम जंबूद्वीप है ।

१. खंड

प्रथम द्वार में जंबुद्वीप में आये हुए खंडो की समझ देकर गिनती करने में आयी है ।

णउ असयं खंडाणं, भरह पमाणेण भाइए लक्खे ।
अहवा णउअसय गुणं, भरह पमाणं हवइ लक्खं ।।३।।

भरतक्षेत्र के प्रमाण से लाख को विभाजित करें तो एक सो नब्बे खंड होते है । अथवा भरतक्षेत्र का एकसो नब्बे गुना एक लाख योजन होता है ।

इस जंबुद्वीप में भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र ये दो छोटे खंड है । दोनो समान चौडाई वाले है, उनकी चौडाई ५२६ योजन है । संपूर्ण जंबुद्वीप की चौडाई एक लाख योजन है । यदि हम भरत अथवा ऐरावतक्षेत्र एक खंड गिने तो ऐसे १९० खंड जंबुद्वीप में हो सकते है ।

$$१९० = ५२६\frac{६}{१९} \div १,००,००० \quad \text{अथवा} \quad १,००,००० = १९० \times ५२६\frac{६}{१९}$$

अब किस किस क्षेत्र में कितने कितने खंड है, उसकी गिनती दी है ।

अहविग खंड भरहे, दो हिमवंते अ हेमवइ चउरो ।
अट्ठ महाहिमवंते, सोलस खंडाइं हरिवासे ।। ४ ।।
बत्तीस पुण निसढे, मिलिया तेसट्ठि बीयपासेवि ।
चउसट्ठी उ विदेहे, तिरासिपिंडे उ णउअसयं ।। ५ ।।

भरत क्षेत्र में एक, हिमंवतपर्वत में दो, हिमवंत क्षेत्र में चार, महाहिमवंत में आठ, हरिवर्ष में सोलह, और निषध पर्वत में ३२, ये सब मिला कर ६३, दुसरी तरफ के (ऐरावत की ओर से) तिरसठ (६३) और विदेहके चौसठ ऐसे कुल मिलाकर १९० (एक सौ नब्बे) खंड होते है ।

जंबूद्वीप के बीच में-मध्य में मेरुपर्वत है और महाविदेह क्षेत्र है । महाविदेह क्षेत्र के एक ओर भरतक्षेत्र है तो दुसरी ओर ऐरावत क्षेत्र है । भरतक्षेत्र के साथ हिमवंत पर्वत, हिमवंत क्षेत्र है वैसे ही महाहिमवंत पर्वत और हरिवर्ष क्षेत्र है, वैसेहि निषध पर्वत है ।

ऐरावत क्षेत्र के साथ शिखरी पर्वत और हिरण्यवंत क्षेत्र है, वैसे ही रुक्मी पर्वत, रम्यक क्षेत्र एवं नीलवंत पर्वत है ।

भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के साथ जुडे प्रदेशों में दोनो तरफ ६३-६३ खंड है तथा महाविदेहक्षेत्र के ६४ खंड है, ऐसे कुल मिलाकर १९० खंड है ।

१)	भरत क्षेत्र	१ खंड विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$	योजन
	हिमवंत पर्वत	२ खंड विस्तार १०५२ $\frac{१२}{१९}$	योजन
	हिमवंत क्षेत्र	४ खंड विस्तार २१०५ $\frac{५}{१९}$	योजन
	महाहिमवंत पर्वत	८ खंड विस्तार ४२१० $\frac{१०}{१९}$	योजन
	हरिवर्ष क्षेत्र	१६ खंड विस्तार ८४२१ $\frac{१}{१९}$	योजन
	निषध पर्वत	३२ खंड विस्तार १६८४२ $\frac{२}{१९}$	योजन
		६३ खंड	

ऐरावत क्षेत्र के साथ जुडे क्षेत्र समान है, परंतु नाम अलग है ।

ऐरावत क्षेत्र	१ खंड विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$	योजन
शिखरी पर्वत	२ खंड विस्तार १०५२ $\frac{१२}{१९}$	योजन
हिरण्यवंत क्षेत्र	४ खंड विस्तार २१०५ $\frac{५}{१९}$	योजन
रुक्मि पर्वत	८ खंड विस्तार ४२१० $\frac{१०}{१९}$	योजन
रम्यक क्षेत्र	१६ खंड विस्तार ८४२१ $\frac{१}{१९}$	योजन
नीलवंत पर्वत	३२ खंड विस्तार १६८४२ $\frac{२}{१९}$	योजन
	६३ खंड	

$$\frac{६३ + ६३ + ६४}{\text{भरत} + \text{ऐरावत} + \text{महाविदेह}} = १९०$$

इस तरह जंबूद्वीप के किस क्षेत्र में किस पर्वत के कितने खंड होते है, यह सब बताकर खंडों की कुल संख्या १९० बतायी है ।

जोयणपरिमाणाइं, समचउरंसाइं इत्थ खंडाइं ।
लक्खस्स य परिहीए,तप्पायगुणे य हुंतेव ।। ६ ।।

लाख की परिधि को उसके पाव भाग से गुणाकार करने से योजन प्रमाण के समचौरस खंड होते है ।

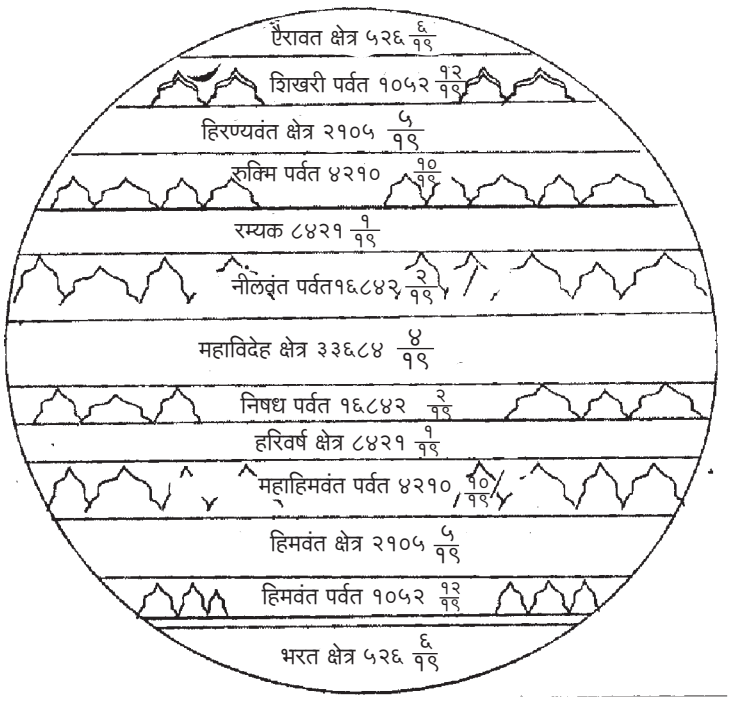

श्रावक - दिनकृत्य

जागत है सौ पावत है.....

श्रावक का प्रथम दिनकृत्य

प्रातः नींद में से जागृत होना यह श्रावक का प्रथम दिनकृत्य है । श्रावक कैसे जागता है ? कब जागे यह बात बताते है :- **नवकारेण विबुद्धो**

यही बात समझाते हुए श्रावक के करणी की सज्झाय में बताते है -

श्रावक तुं उठे परभात, चार घडी रहे पिछली रात, मनमें समरे श्री नवकार.

सच्चा श्रावक चार घडी रात्री शेष हो अर्थात् सुर्योदय से ९६ मिनिट पहले नवकारमंत्र का स्मरण करते हुए जागृत हो....

ऐसा करने से इस लोक में यश किर्ति...बुद्धि.....शरीर.....धन..... व्यापारादि और पारलौकिक धर्मकृत, व्रत,नियम, पच्चखाण प्रमुख का लाभ होता है । परंतु जो सबेरे नवकार मंत्र का स्मरण करते यथा समय जागृत न हो उसके बुद्धि, ऋद्धि और आयुष्य की हानि होती है ।

लौकिक शास्त्र भी कहते है कि -

रात में जो जल्दी सोवे, जल्दी उठे वीर, बल, बुद्धि, धन बहुत बढे, सुखी रहे शरीर ।

आज हम हमारे व्यवहार पर नजर डालेंगे तो ख्याल आयेगा कि हम श्रावक जीवन के प्रथम कर्तव्य के आचरण में ही निष्फल हुए है । प्रातः उठने में विलंब हो जाय अतः कई कामो में कटौती करनी पडती है, और अनादि के संसार के संस्कार हमे संसार में ऐसे लुब्ध बनावे कि हम अपने धर्म की आराधना का त्याग करते है... आराधना में सुस्त और संसार में मस्त बनते है, जिससे दुःख में त्रस्त बनने का समय आता है ।

चलो इन सबसे मुक्त बनकर परमात्म - आज्ञानुसार आराधना की शुभ सुरवात सबेरे, चार घडी रात बाकी हों तब नवकार मंत्र के स्मरण से जागृत हो कर करें....

नवकार मंत्र का स्मरण किस लिए ?

नवकार मंत्र का स्मरण करने से इस विश्व की सब महाविभूतियाँ.... अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और लोक में रहे हुए सब साधु भगवंतो को नमस्कार होता है ..... उनका नामस्मरण अपने तन-मन-जीवन को धन्य बनाता है..... पाप का नाश कर पुण्य के भंडार को भरपूर करता है । इस लोक के चोर, सिंह, सर्प, पानी, अग्नि,बंधन, राक्षस, रोग आदि के भय से मुक्त करता है.... जीवन को अभय बनाता है । नवकारमंत्र का स्मरण परलोक में सुख और सद्गति देता है ।

नवकार मंत्र का एक अक्षर सात सामरोपम का पाप दूर करता है..... नवकारमंत्र के एक पद का स्मरण करने से पचास सागरोपम का पाप नष्ट होता है । एक संपूर्ण नवकार गिनने से पांचसौ सागरोपम के पापों का क्षय होता है.... विधिपूर्वक देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा की पूजा कर भावपूर्वक एक लाख नवकार मंत्र का जाप करनेवाला तार्थंकर नामकर्म उपार्जन करता है.... उसी तरह आठ करोड, आठ लाख, आठ हजार, आठसौ आठ (८०८०८८०८) नवकार गिननेवाला साधक तिसरे भव में मोक्ष पद को प्राप्त करता है ।

कामधेनु...चिंतामणी अथवा कल्पवृक्ष तो इस भव के सुखों को देता है, जब कि नवकार मंत्र तो इसी भव में

पाप से मुक्ति, दुःख से मुक्ति दिलाता है, सुख-शांति और समाधि देता है, एवं परलोक में सद्गति को निश्चित करता है।

नवकार से इस लोक में सुख प्राप्ति :-

एक नगर में धर्मप्रेमी श्रेष्ठी रहते थे। इन श्रेष्ठी का पुत्र शिवकुमार जुंआ आदि सात व्यसनों में लयलीन बना रहता था। पिता बहुत समझाते है, पर वह व्यसनों से पीछे हटता नहीं है। मरणशय्या पर लेटे पिता ने अंतिम सीख दी कि, '' हे शिवकुमार ! मैं तो अब पल दो पल का मेहमान हूँ, तेरे जीवन में कभी भी कोई कष्ट आये तकलीफ आये तो नवकारमंत्र का स्मरण करना, नवकार के शरण में जाना, नवकारमंत्र तेरा रक्षण करेगा'', बस इतना कहते हुए सेठ के प्राण निकल गये।

दुर्व्यसनों से शिवकुमार ने सब धन खो दिया और वह निर्धन बन गया। धन प्राप्त करने के लिये प्रयास करने लगा। एक बार धनार्थी और दुष्ट परिणाम वाले एक त्रिदंडी योगी के कहने पर काली चौदस के दिन रात को स्मशान में उसका उत्तरसाधक बन हाथ में खडग् लेकर योगी द्वारा बताये हुए शव के पैर मसलने लगा, वहाँ दो तीन बार शव खड़ा हो गया और उसे मारने आया, अतः गभराया हुआ शिवकुमार मन में नवकार मंत्र जपने लगा, नवकार मंत्र के प्रभाव से शव शिवकुमार को मार न सका, अंत में शव ने उस योगी को ही मार डाला। अतः योगी ही सुवर्णमय बन गया।

नवकार मंत्र के प्रभाव से शिवकुमार बच गया। बहुत ऋद्धि मिली, सत् कार्य कर सद्गति प्राप्त की, यह है नवकार मंत्र का प्रभाव।

नवकार से परलोक में सद्गति और समृद्धि :-

भरुच नगरी के समीप जंगल में एक बरगद के पेड पर बैठी हुई चील पर पारधी ने बाण छोडा। क्षण भर में बाण से चील आहत हुई, वह वेदना से आकुल व्याकुल बनकर नीचे गिरकर तडपने लगी, कोई पुण्योदय से उसी मार्ग से निकले हुए मुनिराज ने उसका अंत समय जानकर उसे नवकार मंत्र सुना या, नवकार सुनकर आयुष्य पूर्ण कर चील (समळी) का जीव सिंहलद्वीप के राजा के यहाँ सुदर्शना नामक राजकुमारी के रुप में उत्पन्न हुआ। युवान अवस्था में आई हुई इस राजकुमारी ने राजसभा में छींक आने पर एक सेठ के मुँह से ''नमो अरिहंताणं'' यह पद सुना और उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, और नवकार प्रभाव से खुद राजकुामरी बनी है, यह जानकर भरुच (भडोच) नगरी के पास जंगल में पेड के पास सुंदर **''समळी विहार''** नामक जिनालय बंधवाया। जीवन को धर्ममय, आराधनामय, नवकारमय बनाकर आत्मकल्याण साधा।

इस तरह ''नवकार मंत्र'' के प्रभाव से जीव परलोक में सुख और सद्गति को प्राप्त करता है।

जप का करो खप

जप याने क्या ?

अचिंत्य शक्तिसे परिपूर्ण मंत्राक्षरों का वारंवार रटण, उच्चारण अथवा स्मरण जप कहलाता है।

जप शब्द का अर्थ बताते हुए कहते है -

''ज'' कारो जन्मविच्छेदः, ''प'' कारो पापनाशनः ।
तस्माज्जपइति प्रोक्तो, जन्मपापविनाशक : ।।

''ज'' जन्मके विच्छेद का सूचक है और

''प'' पापका विनाश करनेवाला है अतः जप जन्म और पाप दोनों का विनाश करनेवाला (अर्थात् अजरामर

बनानेवाला) है ।

संसार की गलियों में भटकते हुए मन को शुभ विचारों में एकाग्र करने की अद्‌भूत शक्ति मंत्र जप में है । मन के विचारों के शुद्धिकरण में जप का महत्व का योगदान है । मन को ध्यान में ले जाने की पूर्व तैयारी जप द्वारा होती है । अशुभ कर्म का प्रवाह रुक जाता है और आत्मा ज्यादा से ज्यादा निर्मलता प्राप्त करता है ।

संसार में सदा सतत आर्तध्यान में लयलीन बना मन जप द्वारा आर्त और रौद्र ध्यान से मुक्त होकर धर्मध्यान में जुड जाता है । मंत्र जाप की गहराई जैसे जैसे वृद्धिगत होती है, वैसे वैसे आजुबाजू के वातावरण को, स्नेही, संबंधीयों को और आगे बढते हुए स्वयं के देह को भूल आत्मा अपने देहातीत स्वरुप का अनुभव करता है । आत्मानुभूति उसे संसार के भौतिक सुखों की ओर से वैरागी और उदासीन बनाती है । साधक का मन संसार से दूर होता जाता है । आत्मा के नजदीक पहूँचाता है । मानव भव को सफल बनाता है ।

ऐसे मंत्रजाप के अनेक प्रकार है, परंतु हम यहाँ तीन प्रकारों का ही विचार करेंगे । मंत्रजप करनेवाले व्यक्ति का लक्ष्य भौतिक सुख नहीं पर आध्यात्मिक लाभ का होना चाहिये ।

मंत्रजाप के प्रकार :-

सामान्यतः मंत्रजाप के तीन प्रकार बताते है ।

१) भाष्य अथवा वाचिक जाप :- दुसरा सुन सके इस तरह जोर से मंत्रोच्चार किया जाता है, वह भाष्य अथवा वाचिक जाप कहा जाता है । यह जाप का स्थूल प्रकार है । समूह आराधना में यह जाप उपयुक्त है । जापमार्ग में प्रवेश करने वाले के लिये यह प्राथमिक कक्षा है । यह जाप प्राथमिक भूमिका में मन की एकाग्रता करने में सहायक बनता है ।

२) उपांशु जाप :- यह जाप का दुसरा प्रकार है । दुसरा सुन न सके ऐसा सूक्ष्म यह जाप होता है । यह साधक की मध्यम कक्षा है । इस जाप का फल भाष्य अथवा वाचिक जाप से कई गुना होता है । साधक को मानस जाप में ले जाने के लिये यह सेतु समान होता है । इस जाप से मन की एकाग्रता में अद्वितीय वृद्धि होती है ।

३) मानस जाप :- मानस जाप सूक्ष्म है । इस में आंतर-बाह्य मंत्र का उच्चारण नहीं होता । यह जाप अभ्यंतर संवेदना रुप होता है । इस मानस जाप का फल बहुत अधिक होता है । मानस जाप साधक को ध्यान मार्ग में प्रवेश कराने का सामर्थ्य रखता है ।

मंत्रजाप आराधना के लिये आवश्यक सूचनाएं :-

१) मंत्रजाप के लिये शुद्ध, एकांत, शांत स्थान की पसंदगी करना ।
२) मत्रजाप के लिये गरम आसन का अवश्य उपयोग करना ।
३) मंत्रजाप के लिये पूर्व अथवा उत्तर दिशा सन्मुख बैठना ।
४) मंत्रजाप के लिये मौन लेकर बैठना ।
५) वस्त्र एवं शरीर शुद्धि का खास खयाल रखना ।
६) मंत्रजाप के लिये सुखासन, पर्यंकासन अथवा पद्मासन में बैठना
७) स्थिरता से मंत्रजाप करना, चलते-फिरते न करना ।
८) अधिक खाया हो, आलस अथवा निद्रा आती हो तब मंत्रजाप न करना ।
९) खाना खाकर तुरंत मंत्रजाप ना करना ।
१०) प्रसन्न मुखमुद्रामें एवं प्रसन्नचित्त से मंत्रजाप करना ।

११) स्थान, आसन, दिशा त्था मालामें वारंवार बदलाव करना नहीं ।

१२) मंत्रजाप के लिये तीन संध्याकाळ श्रेष्ठ माने जाते है । सबेरे सूर्योदय से पहले, दोपहर मध्यान्ह में और शाम को सूर्यास्त से पहले और बाद में एक एक घडी संध्या समय कहलाता है ।

१३) साधक ने मंत्रजाप के पहले अपने मन को सभी विषय एवं बाह्य प्रपंच से अलग खींचकर मंत्रजाप में जुडना ।

१४) मंत्रजाप मध्यम गति में करना चाहिये, शीघ्रता नहीं करना चाहिये ।

विविध प्रकारकी अंगुली आवर्त जाप

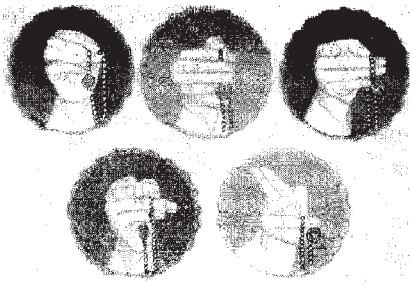

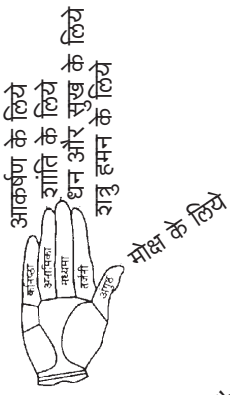

सादा आवर्त जाप

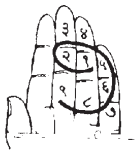

यह आवर्त नौ बार करना

शंखावर्त जाप

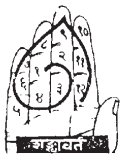

यह आवर्त नौ बार करना
भूत पिशाच दूर होते हैं

नन्दावर्त जाप

यह आवर्त नौ बार करना

ओमकार जाप

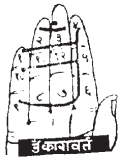

यह आवर्त नौ बार करना

नवपदावर्त जाप

यह आवर्त
बारह बार करना

ह्रींकार आवर्त जाप

यह आवर्त नौ बार करना

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

कर्मो का उपन्यास क्रम

यहाँ कर्मो का जो क्रम दिया गया है वह शास्त्रोक्त है । यह क्रम यूंहि नहीं दिया गया है, परंतु उसके पीछे सविशेष कारण रहा है । हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे ।

आत्मा के अनंतगुण है परंतु इन सभी में ज्ञान-दर्शन मुख्य हैं । ज्ञान दर्शन में भी ज्ञान आत्मा का मुख्य गुण है, अतः उसे आवृत करनेवाला ज्ञानावरणीय कर्म प्रथम स्थान पर रखा गया है ।

ज्ञान के पश्चात दर्शन गुण आने से उसे आवृत करने वाला दर्शनावरणीय कर्म दूसरे स्थान पर रखा गया है ।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मो के उदय में जीव सुख-दुख का वेदन करता है, इससे तीसरे क्रम पर वेदनीय कर्म रखा गया है ।

वेदनीय कर्म के उदय को प्राप्त कर जीव सुख-दुख, शाता-अशाता का अनुभव करता है, तब जीव को रति-अरति, राग-द्वेष आदि होता है, जो मोह के ही रुप है, अतः चौथे क्रम पर मोहनीय कर्म का रखा है ।

मोह से पीडित जीव राग-द्वेष-कषाय और आरंभ समारंभ के कारण तिर्यंच नरकादि का आयुष्य बांधता है, इससे पाँचवे क्रम पर आयुष्य कर्म रखा गया है ।

आयुष्य कर्म के उदय में शरीर, आकृति, गति-जाति की प्राप्ति होने के साथ नाम कर्म का उदय होता है । इससे छठवे क्रम पर नाम कर्म रखा गया है । जहाँ शरीरादि की प्राप्ति हो वहाँ अवश्य उच्च कुल या तुच्छ (हल्के) कुल (गोत्र) की प्राप्ति होती है, अतः नाम कर्म के बाद गोत्र कर्म रखा गया है ।

उच्च या नीच गोत्र के उदय के कारण दान-लाभादि का उदय या विनाश होता है, इससे आठवे क्रम पर अन्तराय कर्म को रखा गया है ।

इस तरह आठो कर्मो के उपन्यास का क्रम हेतु सहित है । हेतु बिना कर्मो का क्रम ज्यों त्यों करने में आया नहीं है ।

ज्ञानावरणीय कर्म

मइ-सुअ-ओही-मण-केवलाणि नाणाणि तत्थ-मई - नाणं ।
वंजण-वग्गह चउहा मण नयण-विणिंदिय-चउक्का ।।८ ।।

गाथार्थ :- ज्ञान पाँच प्रकार का है, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान । मतिज्ञान व्यंजनावग्रह की अपेक्षा से मन और चक्षुरिन्द्रिय को छोडकर शेष इन्द्रिय चतुष्क के भेद से चार प्रकार का होता है ।

यहाँ प्रथम ज्ञान के मुख्य पाँच भेद बताते हैं -

१) इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को **मति ज्ञान** कहते है ।

२) सुनकर के जो जाने वह **श्रुतज्ञान** है ।

३) अवधि याने मर्यादा, मर्यादा में रहे रुपी पदार्थो को जानना वह **अवधिज्ञान** है ।

४) मनः-मन, पर्याय-विचार । मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मनोगत भावों का जानना वह **मनः पर्यवज्ञान** है ।

५) जिस ज्ञान से सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, रुपी अरुपी सर्व द्रव्य, सर्व पर्यायों का एवं भूत-वर्तमान-अतीत का एक साथ साक्षात्कार होता है उसे **केवल ज्ञान** कहते है ।

इन पाँच ज्ञान के भेद में प्रथम दो ज्ञान इन्द्रियादि की सहायता से होता है, इसलिये वे परोक्ष ज्ञान है और आखरी तीन ज्ञान आत्मा से ही होंने के कारण प्रत्यक्षज्ञान हैं ।

मतिज्ञान

मतिज्ञान के अठ्ठावीस (२८) भेद है ।

इन्द्रियों और विषय का सन्निकर्ष होने पर भी ''कुछ है '' इस प्रकार सामान्य अस्पष्ट अवबोध होना **व्यंजनावग्रह** मतिज्ञान कहलाता है ।

चक्षु और मन को छोडकर शेष चार इन्द्रियों का ही व्यंजनावग्रह होता है । व्यंजनावग्रह प्राप्यकारी इन्द्रियों से ही होता ह, अप्राप्यकारी इन्द्रियो से नहीं । मन और चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी होने से उनसे व्यंजन अवग्रह नहीं होता । (चक्षु के द्वारा वृक्ष देख सकते हैं, परंतु वृक्ष के पुद्गल का चक्षु से स्पर्श नहीं होता । मन सभी प्रकार का चिन्तन-विचार करता है, परंतु वे पदार्थ मन को स्पर्श नहीं करते उसे प्राप्त नहीं होते)

अत्थुग्गह-ईहा- वाय-धारणा करण-माणसेहिं छ-हा ।
इय अट्ठ-वीस-भेअं, चउ-दस-हा वीस-हा व सुयं ।।५।।

गाथार्थ - अर्थावग्रह, इहा, अपाय, धारणा, पाँच इन्द्रियाँ एवं मन की अपेक्षा से छह छह प्रकार के होते हैं । इस प्रकार मतिज्ञान के अठ्ठावीस भेद होते हैं । श्रुतज्ञान के चौदह अथवा बीस भेद होते हैं ।

व्यंजनावग्रह द्वारा अव्यक्त बोध होने के पश्चात इंद्रियों के विषय प्राप्त पदार्थ का सामान्य ज्ञान **अर्थावग्रह** मतिज्ञान कहलाता है ।

यह क्या है ? ऐसा विचार करना वह **इहा** ।

इहा के द्वारा संभावित की गई वस्तु का निश्चिय करना - **अपाय** ।

उसे याद रखना वह - **धारणा** ।

इस तरह व्यंजनावग्रह के	४ भेद
अर्थावग्रह के	६ भेद
इहा के	६ भेद
अपाय के	६ भेद
धारणा के	६ भेद

इस तरह कुल मतिज्ञान के २८ भेद होते हैं ।

मतिज्ञानके २८ भेद

(अ) श्रोतेन्द्रिय

१) तुमने कुछ अव्यक्त आवाज (शब्द) सुना.... भाषा वर्गणा के पुद्गल तुम्हारे कान में प्रवेश करके श्रोतेन्द्रिय को स्पर्शे तब तुम्हें जो अव्यक्त ज्ञान हुआ वह **श्रोतेन्द्रिय का व्यंजनावग्रह** ।

२) तत्पश्चात ''किसी ने मुझे आवाज दी '' ऐसा अव्यक्त ज्ञान वह **श्रोतेन्द्रिय का अर्थावग्रह** ।

३) ''यह किसी स्त्री का आवाज लगता है'' ऐसा विचार करना वह **श्रोतेन्द्रिय इहा** ।

४) ''यह तो स्मीता मुझे बुला रही है '' ऐसा निश्चिय होना वह **श्रोतेन्द्रिय अपाय** ।

५) तत् पश्चात उस बात को लम्बे समय तक मन में स्थिर रखना व **श्रोतेन्द्रिय धारणा** ।

(ब) चक्षुरिन्द्रिय

रुप के पुद्गल अप्राप्यकारी होने से चक्षु को स्पर्श करते नहीं इसलिये चक्षुरिन्द्रिय का व्यंजानवग्रह नहीं होता ।

६) तुमने कोई अव्यक्त (अस्पष्ट) रुप देखा... रुप देखते ही प्रथम समय में जो अव्यक्त ज्ञान हुआ वह **चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह** ।

७) यह वृक्ष है या कोई मनुष्य ? ऐसी विचारणा करना वह **चक्षुरिन्द्रिय इहा** ।

८) यह तो स्थिर है.... चलता फिरता नहीं इसलिये यह वृक्ष ही है ऐसा ज्ञान होना वह **चक्षुरिन्द्रिय अपाय** ।

९) तत् पश्चात मन में स्थिर करना वह **चक्षुरिन्द्रिय धारणा** ।

(क) घ्राणेन्द्रिय

तुम्हे कोई अव्यक्त गंध आई ।

१०) उस गंध के पुद्गल घ्राणेन्द्रिय को स्पर्शे तब तुम्हे जो अव्यक्त ज्ञान हुआ, वह **घ्राणेन्द्रिय का व्यंजनावग्रह** ।

११) तत् पश्चात कुछ सुगंध आ रही है, ऐसा अव्यक्त ज्ञान वह **घ्राणेन्द्रिय का अर्थावग्रह** ।

१२) यह गुलाब की सुगंध है या केवडे की ? ऐसी विचारणा वह **घ्राणेन्द्रिय इहा** ।

१३) यह तो गुलाब की ही सुगंध है । ऐसा निशिच्य होना वह **घ्राणेन्द्रिय अपाय** ।

१४) तत् पश्चात मन में स्थिर करना वह **घ्राणेन्द्रिय धारणा** ।

(ड) रसनेन्द्रिय

तुमने कोई अव्यक्त रस का आस्वाद लिया ।

१५) उस रस के पुद्गल रसनेन्द्रिय को स्पर्शे उस समय अति अव्यक्त रुप से रस का ज्ञान हुआ वह **रसनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह** ।

१६) तत् पश्चात ''कुछ स्वाद लग रहा है '' ऐसा ज्ञान वह **रसनेन्द्रिय का अर्थावग्रह** ।

१७) यह गुड है या शक्कर है ? ऐसी विचारणा करना वह **रसनेन्द्रिय इहा** ।

१८) यह गुड नहीं शक्कर ही हैं ऐसा निश्चिय होना वह **रसनेन्द्रिय अपाय** ।

१९) तत् पश्चात मन में धारण करना वह **रसनेन्द्रिय धारणा** ।

(इ) स्पर्शेन्द्रिय

तुम्हें अव्यक्त कुछ स्पर्श हुआ ।

२०) उस स्पर्श के पुद्गल तुम्हारे स्पर्शेन्द्रिय को स्पर्शे उस समय स्पर्श का जो अति अव्यक्त ज्ञान हुआ वह **स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह** ।

२१) तत् पश्चात ''मेरे शरीर को कुछ स्पर्श हुआ '' ऐसा अव्यक्त ज्ञान वह **स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह** ।

२२) ''यह सांप है या रस्सी '' ऐसा विचारणा वह **स्पर्शेन्द्रिय इहा** ।

२३) ''यह रस्सी नहीं पर सांप ही है'' ऐसा निश्चय वह **स्पर्शेन्द्रिय अपाय** ।

२४) इस बात को मन में धारण करना वह **स्पर्शेन्द्रिय धारणा** ।

(उ) मन

तुम अव्यक्त स्वप्न देखकर जागे ।

स्वप्न में कोई वस्तु या चीज बने उसके पुद्गल मन को स्पर्शते नहीं उसी प्रकार मन जो चिंतन-विचारणा करे तब कोई वस्तु-व्यक्ति के पुद्गल मन को स्पर्शते नहीं, इससे मन का व्यंजनावग्रह नहीं होता ।

२५) चिंतन करते प्रथम समये जीव का जो अव्यक्त ज्ञान वह मन का **अर्थावग्रह** ।

२६) ''उस स्वप्न में क्या देखा'' ? उसकी विचारणा वह **मन इहा** ।

२७) ''मैनें सपने में मंदिर ही देखा '' ऐसा निश्चय वह **मन अपाय** ।

२८) यह बात मन में धारण करना वह **मन-धारणा** ।

(ये मतिज्ञान के २८ भेद नंदिसूत्र के आधार पर कहे गये हैं)

श्रुतज्ञान

अक्खर-सन्नि-सम्म, साइअ खलु सपज्जवसिअं च।
गम्मिअं अंगपविट्ठं, सत्तवि ए ए सपडिवक्खा ।।६।।

गाथार्थ : अक्षर श्रुत, संज्ञीश्रुत, सम्यक्श्रुत, सादिश्रुत, सपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अंगप्रविष्टश्रुत ये सात भेद प्रतिपक्ष सहित चौदह भेद श्रुतज्ञान के रुप में जानने चाहिये ।

श्रुतज्ञान के चौदह भेद निम्नलिखित हैं :-

१) अक्षर श्रुत २) अनक्षर श्रुत ३) संज्ञिश्रुत ४) असंज्ञिश्रुत ५) सम्यकश्रुत ६) मिथ्याश्रुत ७) सादिश्रुत ८) अनादिश्रुत ९) सपर्यवसितश्रुत १०) अपर्यवसित श्रुत ११) गमिकश्रुत १२) अगमिकश्रुत १३) अंगप्रविष्ठश्रुत १४) अंगबाह्यश्रुत

१) अक्षरश्रुत :- अक्षर श्रुत के तीन प्रकार हैं :-

१) संज्ञाक्षर २) व्यंजनाक्षर ३) लब्ध्यक्षर

१) संज्ञाक्षर याने अठारह प्रकार की लीपी-अक्षर के आकार जानना ।

व्यंजनाक्षर याने अकारादि हकार पर्यंत बावन अक्षर मुख से उच्चारण करना । ये दो अज्ञानात्मक हैं, परंतु श्रुत का कारण होने से श्रुत कहलाते है ।

शब्दो सुनकर अथवा लिखे अक्षर पढकर हृदय में होता अर्थबोध वह लब्धक्षर श्रुत कहलाता है ।

२) अनक्षर श्रुत :- अक्षरो के उच्चारण के बिना मस्तक हिला कर, हाथ हिलाकर, खांसी, ताली, आंख के इशारे से अथवा अन्य चेष्टाओं द्वारा जो बोध होता है वह अनक्षर श्रुत कहलाता है ।

३-४) संज्ञाश्रुत, असंज्ञीश्रुत :- संज्ञा ३ है - १) दीर्घकालिकी संज्ञा २) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा और ३) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा । इन तीन में से दीर्घकालिकी संज्ञा जिन जीवों को होती है वे जीव संज्ञी कहलाते हैं, बाकी के जीव असंज्ञी कहलाते हैं ।

दीर्घकाल की विचारणा याने भूत भविष्य का विचार करके पश्चात ही कार्य में प्रवृति करे यह **दीर्घकालिकी संज्ञा** कहलाती है । इस संज्ञा वाले गर्भज, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारकी जानना ।

जहाँ मात्र वर्तमान काल का ही विचार है, आगे पीछे की विचारणा नहीं वह **हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा** है । यह संज्ञा विकलेन्द्रिय और समूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य को होती है ।

वीतराग परमात्मा के आगम अभ्यास से मोक्ष के भाव से आत्मा के हित की विचारणा वह **दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा** है । यह ४ से १२ वें गुणस्थानक में रहे सम्यकदृष्टि जीवो को ही होती है ।

संज्ञी जीवों का श्रुत वह **संज्ञी श्रुत**

असंज्ञी जीवों का श्रुत वह **असंज्ञी श्रुत**

५-६ सम्यक श्रुत, मिथ्या श्रुत :- सम्यक दृष्टि प्रणीत और मिथ्यादृष्टि प्रणीत परंतु सम्यकदृष्टि के पास रहा श्रुत वह सम्यकश्रुत कहलाता है । मिथ्यादृष्टि के पास रहा श्रुत वह मिथ्याश्रुत कहलाता है ।

७-८-९-१०) सादि,अनादि तथा सपर्यवसित, अपर्यवसित श्रुत -

७) जिस श्रुत का प्रारम्भ होता है वह **सादि श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

८) जो श्रुत ज्ञान अनादिकाल से चला आ रहा है (जिसका प्रारंभ न हो) उसे **अनादि श्रुतज्ञान** कहते हैं ।

९) जिस श्रुत ज्ञान का अंत होता है, वह **सपर्यवसित श्रुतज्ञान** ।

१०) जिस श्रुतज्ञान का अंत नहीं होता वह **अपर्यवसित श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

ये चारों चार प्रकार के भांगो (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) से विचार सकते हैं ।

१. द्रव्य से - एक पुरुष की अपेक्षा से श्रुत का प्रारंभ भी होता है और मृत्यु-विस्मृति आदि के कारण अंत भी होता है, इससे वह **सादि - सपर्यवसित श्रुतज्ञान** है ।

बहुत पुरुषों की अपेक्षा से श्रुत का प्रवाह चलता ही आता है, इससे उसका प्रारंभ भी नहीं और अंत भी नहीं

इससे वह **अनादि-अपर्यवसित श्रुतज्ञान** है ।

२. क्षेत्र से :- भरत-ऐरावत क्षेत्र में श्रुत का प्रारंभ भी है और अंत भी है, इससे वहाँ सादि-सपर्यवसित श्रुतज्ञान है । महाविदेह क्षेत्र में सदाकाल श्रुतज्ञान है ही, उसका प्रारंभ भी नहीं और उसका अंत भी नहीं इससे वह **अनादि अपर्यवसित श्रुतज्ञान** है ।

३) काल से :- उत्सर्पिणी -अवसर्पिणी की अपेक्षा से भरत-ऐरावत क्षेत्र में प्रारंभ भी है और अंत भी है इससे वहां सादि-सपर्यवसित है । महाविदेह क्षेत्र में उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल नहीं होने से सदैव सम्यकश्रुत विद्यमान होता है, अतः वहाँ **अनादि अपर्यवसित श्रुतज्ञान** है ।

४) भाव से :- सम्यगदृष्टि भव्य जीव की अपेक्षा से श्रुत की आदि भी है और (केवलज्ञान प्राप्त होते) अंत भी है इससे भवसिद्धिया की अपेक्षा से **सादि - सपर्यवसित श्रुतज्ञान** है ।

क्षायोपशमिक भाव से अथवा मिथ्यादृष्टि अभव्य जीव को श्रुत का प्रारंभ भी नहीं और अंत भी नहीं इससे उनकी अपेक्षा से अनादि-अपर्यवसित श्रुतज्ञान है ।

११. गमिकश्रुत :- गमा याने समान पाठ / आलापक जिन शास्त्रों में बार बार समान आलापक अथवा पाठ आते हैं वे **गमिक श्रुतज्ञान** कहलाते हैं ।

जैसे - दृष्टिवाद, पाक्षिक सूत्र आदि ।

१२. अगमिकश्रुत :- जिन शास्त्रो में बार बार समान पाठ या आलापक नहीं आते उन्हे **अगमिक श्रुत** कहते हैं ।

१३. अंग-प्रविष्टश्रुत :- अरिहंत परमात्मा के केवलज्ञान के पश्चात त्रिपदी / देशना सुनकर गणधर भगवंत द्वादंशागी की रचना करते हैं, उस अंग में समाविष्ट श्रुत **अंगप्रविष्ट श्रुत** है ।

१४. अंगबाह्य श्रुत :- गणधर भगवंतो के पश्चात स्थविर आचार्यो द्वारा रचित श्रुत वह **अंग बाह्य श्रुत** है ।

प्राणातिपात विरमणव्रत

अनंत उपकारी.....तरणतारण.....देवाधिदेव.....

तीर्थंकर परमात्मा.....

भव्य जीवो के एकमेव कल्याण के लिये धर्मतीर्थ की स्थापना करते है....

यह धर्म चार प्रकार के है - दान, शील, तप एवं भाव ।

धर्ममार्ग में प्रवेश करना है ?.... दान से ही प्रवेश संभव है..... इस दान धर्म की पराकाष्ठा से ही मोक्ष की मंजिल मिलती है ।

दान के सर्व प्रकारों में **अभयदान** सर्वश्रेष्ठ है । दया धर्म का मूल है इसलिये तो सद्गति के इच्छुक साधक हिंसा से सदा भयभीत रहते हैं..... हिंसा से दूर भागते है ।

अलसा भवता कार्ये, प्राणिवधे पंगुलाः सदा भवत । परतप्तिषु बधिरा-जात्यन्धाः परकलत्रेषु ।।

हे धर्मजिज्ञासुओ ! तुम्हें यदि सद्गति प्राप्त करने की इच्छा हो तो श्रेष्ठजनो को निंदित ऐसे नीच कार्य में आलसी बन निरुद्योगी बनो, उसी तरह प्राणियों का वध करने में हमेशा अपंग बनो, परपीडाओं में बधिरता धारण करो एवं परस्त्रीयो के बारे में जन्मांघ की तरह प्रवृत्ति करो अर्थात उनकी उपेक्षा करो ।

अहिंसा परमोधर्म यह सूत्र सारे धर्मो को मान्य सूत्र है, उसका अस्वीकार कोई कर सके ऐसा नहीं है, परंतु विश्व स्थूल अहिंसा को धर्म मानता है जबकि जैन श्रावक सूक्ष्म अहिंसा को स्वीकारने वाला होता है, उसकी अहिंसा अनोखी होती है ।

दया के समुद्र तथा करुणा के सागर ऐसे तीर्थंकर प्रभुजी ने अपने जीवन में सम्पूर्ण अहिंसा का पालन करके हमारे सबके समक्ष यह मार्ग रखा है । पुण्य के उदय से मिल गये जिनशासन को सच्चे तरीके से समझने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो कदम कदम पर हिंसा करके पापो के भंडार भर लेंगे । जीवन में क्षण-क्षण किये जाते पापो से बचने के लिये भी श्रावक जीवन के प्राणातिपात विरमणव्रत को समझने की आवश्यकता है । लंबी आयु.... पांच इन्द्रियों की पूर्णता.... काया की नीरोगता तथा शाताकारी जीवन यह अहिंसामय जीवन की उपलब्धि है ।

श्रावक को प्रथम प्राणातिपात विरमण व्रत को स्वीकार ने के लिए नीचे अनुसार की प्रतिज्ञा करने की होती है ।

''चलते फिरते निरपराधी जीव को मार डालने के इरादे के साथ जानबूझकर मारुंगा नहीं ।''

संसारी जीव सावधानी पूर्वक संसार के कार्य करे तो जयणा द्वारा बहुत से जीवो को अभयदान दे सकते है, जयणा को ज्यादा से ज्यादा जीवन में लाने वाला यह व्रत है । अतिचारो को सिर्फ जानना ही नहीं है, परंतु जानकर के अपने जीवन में से उन्हें विदा करना है, जीवन को शुद्ध-सात्विक एवं अहिंसक बनाना है, सारे जीवो के साथ अखंड मैत्री साधने की है ।

सम्यक्त्व व्रत संक्षिप्त में जाना अब प्रथम प्राणातिपात विरमण आदि पांच अणुव्रत श्रावक के है और वो ही पांच महाव्रत साधु के है । साधु की अपेक्षा से श्रावक को अणु यानि छोटे व्रत उन्हैं अणुव्रत कहा जाता है, या समकित प्राप्ति के बाद के जो व्रत उन्हें अणुव्रत कहा जाता है । इसमें पहला प्राणातिपात विरमणव्रत नामक महाव्रत साधु को होता है, वो साधु को सम्पूर्ण बीस विश्वा की जीवदया है और श्रावक को तो सवा विश्वा (वसा) की जीवदया है, जिसके लिये जीव के दो भेद है, एक तो एकेन्द्रिय आदि पांच स्थावर वो सूक्ष्म जानना, यद्यपि पांच स्थावर के सूक्ष्म एवं बादर दो प्रकार के है तथापि उन सूक्ष्म जीवो के शरीर को बाह्य शस्त्र आदि का घाव लगता नहीं है, उनका खुद की जाति के जीवो से ही घात होता है, इसलीये अहिंसा सूक्ष्म शब्द से भी पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु एवं वनस्पतिरुप बादर पांचो स्थावर है, उन्हें ही सूक्ष्म कहना और बेइन्द्रिय आदि बडे जीव वो बादर जानना, उसमें भी साधु को तो सूक्ष्म व बादर रुप सर्व जीवो की विराधना से विरमण का नियम पूरापूरा बीस विश्वा का है और श्रावक से तो सूक्ष्म जीव की दया पाली नहीं जा सकती क्योंकि एक बार अन्नपान करने में भी छः काय की विराधना होती है, इसलीये सूक्ष्म की दया नहीं पलती सिर्फ बादर बडे जीवो की दया पाली जा सकती है, इसलिये बीस विश्वा में से दस गये बाकी दस विश्वा दया रही । उसमें भी गृहस्थ आजीविका के लिये कर्षण (खेती) आदि का आरंभ करता है, उस समय बेइन्द्रिय आदि बडे जीवो का भी घात होता है, इस हेतु श्रावक आगार खुला रखता है, इसलीये संकल्प कर जानबूझकर बडे जीवो को नहीं मारने का नियम करता है, पर अन्जाने में आरंभ-समारंभ करने से जीवो का घात हो जाय तो वह खुला रखता है, इसलीये दस विश्वा में से आधा जाय तो बाकी पांच विश्वा दया रही, उसमें भी कोई अपने घर में चोरी करने आया हो उसे या अपनी स्त्री के साथ कोई अनैतिक कृत्य करे तो ऐसे पंचेन्द्रिय जीव को भी जानबूझकर मारना पडता है, इसलीये आगार खुला रखता है और निरपराधी को नहीं मारने का नियम करता है, पर जो अपराधी जीव हो उन्हें नहीं मारने का नियम

नहीं है, उनकी जयणा रखता है, इस तरह से पांच विश्वा में से भी ढाई विश्वा गया, बाकी ढाई विश्वा की दया रही । उसमें भी बैल, अश्व आदि जीवो को जोतता है, वो पंचेन्द्रिय जीव है, निरपराधी है, तो भी उनकी शक्ति जाने बिना चाबुक आदि मारना पडे उसका आगार रखता है । इसलीये किसी भी जीव पर प्रहार करना वो निर्दयीपन से नहीं पर सापेक्ष सहृदयपने से करना, इस तरह से ढाई विश्वा में से सवा गया, शेष सवा विश्वा की दया श्रावक से भी पाली जा सकने से अणुव्रत कहलाते है, यह प्रथम प्राणातिपात विरमण नामक व्रत कहा । इसी तरह से दूसरे महाव्रत में साधु को सूक्ष्म-बादर सारे प्रकार के झूठ बोलने से बचने का नियम है और श्रावक को तो कन्यालिक आदि के पांच बडे झूठ बोलने का नियम होता है, बाकी तो सर्व की जयणा होती है तथा तीसरे महाव्रत में साधु को तृणमात्र भी अदत्त नहीं लेने का नियम है, पडी हुई नीम की काडी (सली) मात्र भी ले तो भी ''अणुजाणह जस्सगो'' ऐसा कहकर ले और गृहस्थ को तो जो वस्तु लेने से अपने उपर चोरी का कलंक चढे, राजदंड हो, ऐसा अदत्त नहीं लेने का नियम होता है, पर सूक्ष्म अदत्त नहीं लेने का नियम नहीं होता तथा चौथे महाव्रत में तो साधु को तो सर्व प्रकार से ब्रह्मचर्य पालने का नियम होता है पर श्रावक यदि अपना मन काबू में रखे तो आजीवन ब्रम्हचर्य पाले नहीं तो स्वस्त्री पर संतोष रखे तथा पांचवे महाव्रत में साधु को तो बाह्य अभ्यंतर सर्व प्रकार से धन-धान्य आदि नवविध परिग्रह नहीं रखने का नियम होता है और श्रावक को तो नव प्रकार के परिग्रह का परिमाण करके रखने का है, इसलीये अणुव्रत कहलाता है ।

१) प्रथम प्राणातिपात विरमणव्रत में किसी भी अपराध बिना के त्रस जीव को मार डालने की बुद्धि से नहीं मारना । धंधा-रोजगार करते हुए या रसोई बनाते या रसोई आदि कामकाज करते जीव विराधना हो, उसकी इस व्रत में जयणा; त्रस जीव वो दो इन्द्रिय वाले, गिंडोले, कृमि, पोरा आदि । तीन इंद्रिय वाले चींटी, मकोडे, खटमल जुं, लट, धनेडे वगैरह । चार इंद्रिय वाले बिच्छू, भंवरा, मक्खी, मच्छर, झींगुर वगैरह । पांच इंद्रियवाले - मनुष्य, पशु, पक्षी, मत्स्य आदि ऐसे त्रस जीव यानि चलते फिरते जीवो को अपराध बिना मार डालने की बुद्धि से मार डालना नहीं, ऐसी प्रतिज्ञा कर उसे पालते रहना । इस व्रत में **१) बंध-** मनुष्य तथा पशु आदि जीवो को प्रगाढ बंधन से बांधना **२) वध -** जीवो को जोरदार प्रहार कर घायल किया हो या वध हो गया हो । **३) छेद-विच्छेद -** जीवो के नाक, कान, पूंछ वगैरह अंगो को काटा हो **४) अतिभार-आरोपन -** बैल, घोडा, उंट के उपर अतिभार लाद कर चलाया हो **५) भतपाणव्यवच्छेद -** अपने पर आश्रित मनुष्यो तथा पशुओ को समय अनुसार खुराक-पानी दिया न हो या खाने-पीने को दिया नहो । ये पांच अतिचार दोष पहले व्रत में लगाना नहीं ।

इस व्रत के पालन में नीचे के नियम सहायक बनते हैं :-

१) मैं चुल्हा सिलगाने से पहली जयणा पूर्वक पूंजणी से प्रमार्जित करुंगा ।

२) मैं बासी झाडु जयणा पूर्वक निकालुंगा ।

३) मैं बिना छाने पानी का उपयोग नहीं करुंगा ।

४) मैं पांच तिथि को हरी सब्जियों (लीलोतरी) का त्याग करुगां ।

५) मैं छः अट्ठाइयो के समय हरी सब्जियों का उपयोग नहीं करुंगा ।

६) मैं कंदमूल का त्याग करुंगा ।

७) मैं बासी भोजन का त्याग करुंगा ।

८) मैं बोड अचार का त्याग करुंगा ।

९) मैं फटाके नहीं फोडुंगा

१०) मैं अनाज साफ किये बगैर पीसवाउंगा नहीं ।

११) मैं बाहर के खाद्य पदार्थ उपयोग में नहीं लाऊंगा ।

१२) मैं द्विदल (कच्चे दूध, दही, छांछ के साथ कठोर धान्य) वापरूंगा नहीं ।

१३) मैं बरफ, आइस्क्रीम नहीं वापरुंगा ।

१४) मैं पशु-पक्षी के आकार के बिस्किट, चॉकलेट वगैरह नहीं वापरुंगा ।

१५) मैं पशु-पक्षी के चित्र वाले वस्त्र उपयोग में नहीं लाऊंगा ।

१६) मैं रात्रि भोजन का त्याग करुंगा ।

१७) मैं कुत्ते, पोपट वगैरह पशु-पक्षी पालुंगा नहीं, उन्हें पिंजरे में या जंजीरो से बांधुगां नहीं ।

१८) मैं झाड काटने....लॉन-बगीचा बनाने का काम करुंगा नहीं ।

१९) मैं पशु या मानव की हत्या करुंगा नहीं, करवाऊंगा नहीं ।

२०) मैं गर्भपात करुंगा नहीं, करवाऊंगा नहीं, उसकी सलाह दूंगा नहीं ।

२१) मैं आवेश में आकर किसी मनुष्य, नोकर, चाकर या पशु,पक्षी को पत्थर, लकडी, बेलन, चाकू वगैरह से मारुंगा नहीं, प्रहार करुंगा नहीं ।

२२) मैं नोकर, चाकर को भूखा रखूंगा नहीं ।

२३) मैं जबरदस्ती से किसी के पास से काम नहीं करवाऊंगा ।

२४) मैं घर में मछलीघर नहीं बनाऊंगा ।

२५) मैं चीटींयो वगैरह के दर (बिल) का नाश नहीं करुंगा ।

२६) मैं नदी, तलाब में स्नान नहीं करुंगा ।

२७) मैं शाक,भाजी सुधारते वक्त सावधानी रखूंगा ।

२८) मैं अनाज साफ करे बिना धूप में डालुंगा नहीं ।

२९) मैं मच्छर आदि के उपद्रव हेतु जहरीली दवाओ का उपयोग नहीं करुंगा ।

३०) मैं पशु-पक्षियों को आपस में लडाऊंगा नहीं ।